अनुबोधन, खण्ड 2, अंक 1, मार्च 2026, पृष्ठ 34–37
ISSN: 3049-4184 (प्रिन्ट), 3108-1185 (ऑनलाइन)
https://doi.org/10.65885/anubodhan.v2n1.2026.004

बौद्ध एवं अद्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष की प्रकृति का दार्शनिक विमर्श

डॉ. शीतांशु पाण्डेय*

प्राप्तिः 27 फरवरी 2026 / स्वीकृतः 7 मार्च 2026 / प्रकाशितः 31 मार्च 2026
जर्नल वेबसाइटः https://anubodhan.org

प्रत्यक्ष प्रमाण को सामान्यतया एक बडा सरल व शुद्ध प्रमाण स्वीकार किया जाता है। जिसके विषय मे सामान्य धारणा यह है कि वस्तु जैसी होती है, इन्द्रियों के माध्यम से प्रत्यक्षतः उसी रूप मे उपलब्ध हो जाती है परन्तु प्रमाणमीमांसीय विचार परम्परा में प्रत्यक्ष के सरल एवं शुद्ध रूप का निर्धारण कठिन हो जाता है। भारतीय दर्शन के विभिन्न संप्रदायो मे प्रत्यक्ष की विभिन्न अवधारणाएं विकसित हुई है। इस शोध पत्र में बौद्ध एवं अद्वैत वेदान्त में प्रत्यक्ष की अवधारणा के विभिन्न पक्षों का चिन्तन किया जाएगा।

बौद्ध मत में सम्यक् ज्ञान दो प्रकार का होता है– अर्थक्रिया की प्रतीति कराने वाला और अर्थक्रिया समर्थ में प्रवृत्ति कराने वाला।[1] यह सम्यक् ज्ञान दो प्रकार का है– प्रत्यक्ष और अनुमान।[2] न्यायबिन्दु में प्रत्यक्ष को परिभाषित किया गया है– तत्र कल्पनापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्षम्।[3] अर्थात् दोनो में प्रत्यक्ष ज्ञान वह है जो कल्पना रहित हो तथा निर्भान्त हो। अद्वैत वेदान्त छः प्रमाण स्वीकार किये जाते है। इन छः प्रमाणो मे प्रत्यक्ष प्रमा के करण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है। वेदान्त सिद्धान्त मे प्रत्यक्ष प्रमा ही चैतन्य है।[4]

बौद्ध एवं अद्वैत वेदान्त इन दोनों ही दर्शनों का तत्वमीमांसीय आधार बिल्कुल भिन्न है जिससे उनका ज्ञानमीमांसीय स्वरूप भी भिन्न प्रतिमान स्थापित करता है, क्योंकि जहाँ अद्वैत वेदान्त ब्रहा सत्यं जगत मिथ्या की अवधारणा स्वीकार करता है[5] तथा पारमर्थिक स्तर पर आत्मा व परमात्मा में कोई भेद स्वीकार नहीं करता है, तथा जगत को व्यवहारिक रूप से ही तृप्ति सत् स्वीकार करता है। अद्वैत मत मे प्रत्यक्षप्रमाण की केवल व्यवहारिक उपयोगिता है।[6] वही बौद्ध मत 'यत सर्वम् तत् क्षणिकम्' के मत में विश्वास करता है, जिस कारण स्वलक्षण को ही परमार्थसत् के रूप में स्वीकार किया जाता है।

बौद्धों के तत्वमीमांसीय प्रतिष्ठापनाओं के चलते ज्ञानमीमांसीय संरचना में समस्या दिखाई पड़ती है बौद्धों के क्षणिकवादी स्वरूप की व्याख्या में जगत के स्वरूप की व्याख्या व्यवहारिक लक्षणों पर तो हो जाती है परन्तु जब ज्ञानमीमांसीय स्वरूप में प्रमा, प्रमेय,

*दर्शनशास्त्र विभाग, कोशी कालेज, खगडिया
ई–मेलः pandeyshitanshu@ymail.com

प्रमाता के स्वरूप को लेकर ज्ञान की व्याख्या करते है तो उनका मजबूत स्तम्भ उस रूप में नही ठहर पाता है, जितना अन्य दर्शनों का। यद्यपि बौद्ध नैयायिकों ने अपने तत्वमीमांसीय प्रतिबद्धता के फलस्वरूप काफी हद तक अपने सिद्धान्तों की स्थापना व बचाव किया है।

बौद्धों का प्रत्यक्ष विशिष्टता रखता है। यह केवल इन्द्रिय प्रत्यक्ष तक सीमित ना होकर अर्थ का साक्षात्कार करने वाला होता है प्रत्यक्ष में चाक्षुष ज्ञान उत्पन्न होने पर अर्थ के साथ सारूप्य होता हैं। इस सारूप्य से ही वस्तु अर्थ का सारूप्य करने वाली हो जाती हैं। जबकि अद्वैत वेदान्त मे प्रत्यक्ष अन्तःकरण वृत्ति के रूप मे जाना जाता है।

प्रत्यक्ष की परिभाषा बौद्ध दर्शन में विवाद का विषय रहा है। आचार्य धर्मकीर्ति ने प्रत्यक्ष को कल्पना और अभ्रान्त ज्ञान कहा है। आचार्य दिङ्नाग द्वारा प्रत्यक्ष के लक्षण में अभ्रान्त पद का प्रयोग ना किया जाना[7] व उत्तरवर्ती आचार्य धर्मकीर्ति द्वारा प्रत्यक्ष की परिभाषा में अभ्रान्त पद का प्रयोग बौद्ध–न्याय के चिन्तन का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वरूप, लक्षण, प्रयोजन, प्रकार फल इत्यादि पर जो भी बौद्ध व अ़द्वैत वेदान्त मत में सामंजस्य व मत भिन्नता है। वह अन्य बहुत सारी समस्याएं जो इनके अद्वैत वेदान्त में ब्रह्म को एकमात्र सत्य के रूप में स्वीकार किया जाता है, ब्रह्म न तो प्रत्यक्ष के द्वारा न अनुमान के द्वारा और ना तर्क के द्वारा जाना जा सकता है, साधारण जनों के लिए ब्रह्म को जानने का एकमात्र उपाय श्रुति–प्रमाण ही हैं।

रूपादि के कारण ब्रहा प्रत्यक्ष का विषय नही हैं, रूपादि के अभाव के कारण ब्रह्म अनुमान का भी विषय नहीं है, ब्रहा को तर्क द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है, क्योंकि पुरूषमात्र की विरूपता के कारण तर्क को प्रतिष्ठित नही किया जा सकता। अपरोक्षानुभूति ही ब्रहा साक्षात्कार कर सकती है। ब्रहा ज्ञाता है। वह ज्ञेय नही है कि उसका ज्ञान किसी अन्य प्रमाण द्वारा हो सकता है, अनुभूति के अतिरिक्त जितने भी प्रमाण है, वे सब अनुभव प्राप्ति के साधन है जिनका कार्य होता है– अविद्याकल्पित भेदो की निवृत्ति करना। श्रुतिज्ञान अनुभव के पास जल्दी लाती है। अनुभव ही सभी ज्ञानों का लक्ष्य है, प्रत्यक्ष, अनुमान व श्रुति इत्यादि प्रमाणों का कार्य इतना है कि वे प्रदर्शित करे कि आत्मा अनात्म वस्तुओं से बिल्कुल पृथक है। ब्रहा, ब्रह्मज्ञान एवं प्रमाण इनमें प्रमा का जो करण है वह प्रमाण है, प्रमा का अर्थ यथार्थ ज्ञान लिया जाता है अनधिगत व अबाधित ज्ञान प्रमा का लक्षण है। महत्वपूर्ण यह है कि वेदान्ती धारावाही ज्ञान स्वीकार करते हैं और इनके धारावाही ज्ञान में अनधिगत विषयत्व होता है क्योंकि धारावाही बुद्धि में भिन्न–भिन्न ज्ञान नही होता बल्कि धारावाही बुद्धि में एकता रहती है, 'अयं घटः' की तृप्ति के विरूद्ध अयं पटः, यह दूसरी वृत्ति पहली को नष्ट करके ही उत्पन्न होती है। धारावाही बुद्धि में यह घट है। इस प्रकार महूर्त भर स्थिर रहने वाले ज्ञान का भेद स्वीकार नही किया जाता क्योंकि जब तक एक ही विषय प्रतीत होता है तब तक तदाकार अन्तःकरण वृत्ति भी एक ही रहती है। वेदान्त एवं बौद्ध दोनों मतों में धारावाही ज्ञान के विषय में भिन्न मत मिलते हैं, क्योंकि बौद्धमत में धारावाही ज्ञान को प्रमा के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है, जबकि दोनों ही प्रमा मे अनधिगत विषय को ही विषय कहते है। अद्वैत वेदान्त छह प्रमाणों को स्वीकार करता है[8] उन छह प्रमाणों में प्रत्यक्ष प्रमा के करण को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है यहां प्रत्यक्ष प्रमाण यह लक्ष्य है तथा प्रत्यक्ष प्रमायाः करणम यह लक्षण है।

प्रत्यक्ष प्रमायाः करणम् इसलिए कहा जाता है क्योंकि केवल प्रमा का करण कहने से अनुमान, उपमान आदि प्रमा करणों में भी अतिव्याप्ति हो जाती, वह नही है। इसलिए प्रत्यक्ष प्रमा का करण कहा गया है। घट से चक्षुरिन्द्रिय का सन्निकर्ष होने पर यह घट है। इस प्रकार का प्रत्यक्षात्मक ज्ञान हेाता है इस ज्ञान या प्रमा को अप्रत्यक्ष कहते है। इस प्रमा का करण चक्षुरिन्द्रिय होता हैं, उसे भी प्रत्यक्ष कहते है, इसलिए प्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग प्रत्यक्ष प्रमा और उसके करण दोनों अर्थों में होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान ज्ञानाजन्य ज्ञान अर्थात् ज्ञान से उत्पन्न ना होने वाले ज्ञान को कहते है, जबकि अनुमित, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि ये पाँच प्रमाएं क्रम से व्याप्ति ज्ञान, सादृश्यज्ञान, तात्पर्यवत्पद–ज्ञान, अनुपलब्धि ज्ञान– इन पांच ज्ञानों से पैदा होते है, दूसरे दृष्टिकोण में यह भी नहीं कह सकते है कि इनके मत में प्रत्यक्ष प्रमा का अर्थ केवल इन्द्रियजन्यज्ञानत्व प्रत्यक्षप्रमात्वम् अर्थात् इन्द्रिय से पैदा होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमा है क्योंकि वेदान्त मत में सुख दुःख आदि का भी प्रत्यक्ष इन्द्रिय से अनुभव होता है, जबकि इनके यहाँ मन को इन्द्रिय रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। इसीलिए 'ज्ञानकरणकं ज्ञान' ज्ञान जिसका करण नही है ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमा है। अगर मन को इन्द्रित्व मान लिया जाए तो मनोजन्य अनुमित, उपमिति आदि भी प्रत्यक्ष है ऐसा प्रश्न उपस्थित हो जाएगा।

वेदान्त मत में इसलिए यह प्रश्न प्रासंगिक हो जाता है कि प्रत्यक्ष प्रमा का प्रयोजक कोई तो कोई अवश्य होगा क्योंकि इन्द्रिजन्य को वेदान्ती स्वीकार नही करते। इस रूप में वेदान्तियों का मत यह सामने आता है कि प्रमाण चैतन्य और प्रमेय चैतन्य दोनों का ऐक्य ज्ञानगत प्रत्यक्ष का प्रायोजक है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि अद्वैतवाद में प्रमाण चैतन्य व प्रमेय चैतन्य का भेद है कैसे सम्भव है? इस पर वेदान्त मत में यह उत्तर दिया जाता है कि अद्वैतवाद मे अद्वितीय चैतन्य के वास्तविक भेद नही है बल्कि आकाश के घटाकाशादि भेदो की तरह उसका औपाधिक भेद होना सम्भव है। घटादि विषयों में अवच्छिन्न हुआ चैतन्य विषय चैतन्य हेाता है, अन्तः करण की वृत्ति से अवच्छिन्न हुआ चैतन्य ही प्रमाण चैतन्य होता है, अन्तः करण की वृत्ति से अवच्छिन्न हुआ चैतन्य प्रमाण चैतन्य है, अन्तः करण से अवच्छिन्न हुआ चैतन्य भी प्रमातृ चैतन्य है। इस प्रकार औपाधिक भेदों की तरह चैतन्य का भी विषय, अन्तःकरण वृत्ति और अन्तः करण इन तीन उपाधियाँ के कारण त्रिविध भेद होता हैं।[9]

प्रत्यक्ष प्रमाण चैतन्य होता है यह चैतन्य भेद उपाधि के भेद के कारण होता है इसी प्रकार प्रमाण चैतन्य की वृत्ति उपाधि है और विषय चैतन्य की विषय उपाधि है। इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष के समय अन्तःकरण शरीर से बाहर निकलता है तब यह घट है इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमा में घटादिविषय और तदाकार वृत्ति का शरीर से बाहर एक स्थान में अवस्थान होने से उन दोनों में अवच्छिन्न हुआ चैतन्य एक ही है।

प्रत्यक्षत्व का प्रयोजक इन्द्रियजन्यत्व को मानने पर समस्या आती है कि इन्द्रियजन्यत्व ज्ञान का तो प्रत्यक्ष होता है पर मन मे इन्द्रियत्व नही होने से सुख दुख आदि का प्रत्यक्ष सिद्ध नही होगा।

इन्द्रिय विचार को लेकर भी बौद्धो और वेदान्तियो मे पर्याप्त मतभेद मिलते है बौद्धो के मत मे गोलक मात्र इन्द्रिय है अर्थात् जो दिख रहा है वही इन्द्रिय है''कृष्णतारेसत्युपलम्भात् कृष्णसार मेव चक्षुः'' ।कृष्णतारा होने पर ही दर्शन होता है। अतः कृष्णतारा ही चक्षु है वही मीमांसको का मत है कि गोलक मे विद्यमान शक्ति ही इन्द्रिय है जबकि वेदान्त मत दोनो की समालोचना करते है। बौद्धो के मत की समालोचना करते कहते है कि यदि हम गोलक मात्र के इन्द्रिय स्वीकार करे तो हमे अत्यन्त कठिनाई होगी क्योंकि ऐसी स्थिति मे यदि जिसका गोलक दिखाई ना दे उसके आंख नही है, परन्तु वेद कहते है कि पेडो को भी सुनाई दिखाई देता है। सर्प को भी सुनाई देता है परन्तु वहां उनकी इन्द्रियॉ दिखाई नही पडती है। इसलिए गोलक मात्र इन्द्रिय नही है तो गोलक मे विद्यमान शक्ति भी इन्द्रिय नही है। वस्तुतः इन्द्रिय एक स्वतन्त्र द्रव्य है जो सूक्ष्म और अतीन्द्रिय देखे जाने वाली वस्तु और तत्संबंधित इन्द्रिय का निर्माण एक ही समान द्रव्य मे होता है। इसलिए किसी एक विशेष इन्द्रिय से उससे संबंधित विषय का ही ज्ञान होता है अन्य का नही। जैसे चक्षु और उसका विषय रूप आकार दोनो ही तैजस(स्पहीज) से निर्मित है अतः चक्षु से तैजसयुक्त रूपाकार का ज्ञान होता है गंधयुक्त पृथ्वी का नही।[10]

भारतीय दर्शन मे सुख आदि के ज्ञान को लेकर महत्वपूर्ण विचार प्रचलित है। बौद्ध मत मे सुख आदि का स्पष्ट अनुभव के कारण इनका स्वसंवेदन होता है। अन्य चित्त की अवस्थाओ का नही। सुख आदि को सांख्य की भॉति नील आदि जड पदार्थो का धर्म नही कहा जा सकता है जबकि वेदान्तियो के अनुसार सुखादि घटादिको की तरह बाह्य होते तो इन्द्रिय सन्निकर्ष की आवश्यकता नही पडती।

जगत मे होने के अनुभव के साथ जो चीज जैसी है उस को उसी रूप मे प्राप्त करने का ढंग,या सही रूप मे प्राप्त करना, इन दोनो स्थितियां हमेशा ही प्रत्यक्ष की भूमिका को और अधिक महत्वपुर्ण बनाते है। इस रूप मे प्रत्यक्ष प्रमाण का महत्व व उपादेयता ना केवल ज्ञानमीमांसीय परम्परा मे बल्कि जीवन के हर आनुभविक क्षेत्र मे इसके सही रूप मे प्रयोग के साथ की जा सकती रही हैं। इसके साथ ही दोनो ही दर्शनो के ज्ञानमीमांसीय प्रतिमानो ने ज्ञानमीमांमासीय परम्परा को और अधिक समृद्ध किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्थक्रियानिर्भासम्। अर्थक्रिया–समर्थे च प्रवर्तकम्। न्यायबिन्दु प्रथम परिच्छेद, पृ0 7, 8
2. द्विविधं सम्यक ज्ञानम्।, न्यायबिन्दु, प्रथम परिच्छेद, पृ0 10
3. तत्र कल्पापोढमभ्रान्तं प्रत्यक्ष, न्यायबिन्दु, प्रथम परिच्छेद, पृ0 सं0 11
4. तत्र प्रत्यक्ष प्रमायाः करणं प्रत्यक्ष प्रमाणम्। प्रत्यक्ष प्रमा चात्रचैतन्यमेव।, वेदांत परिभाषा, पृ0 20
5. सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय दर्शन की रुपरेखा, पृ0 296
6. मौर्य, श्यामवृक्ष (2009), अद्वैत वेदान्त (सिद्धान्तबिन्दु के आलोक मे), सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
7. आचार्य धर्मकीर्ति, न्यायबिन्दु, प्रथम परिच्छेद, पृ0 11
8. पाठक, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रुपरेखा, पृ0 138
9. वेदांत परिभाषा, प्रथम परिच्छेद
10. मिश्र, डॉ अमित कुमार (2012), प्रमाणमीमांसा अद्वैत वेदान्त एवं अन्य भारतीय सम्प्रदाय, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).